युगसेतु

वर्ष : 3 अंक : 34 मई, 2014

संपादक
ओम प्रकाश शर्मा

संपादकीय सहयोग
उमेश प्रसाद सिंह
राजू कुमार
रमेश नारायण

विज्ञापन प्रबंधक
अमरेश कुमार पाण्डेय

प्रचार/प्रसार
नरेन्द्र कुमार सिंह

कार्यालय
जी-21, प्रथम तल, लक्ष्मी नगर,
दिल्ली-110092
दूरभाष-011-22040692

संपर्क
एन-33, भूतल, लक्ष्मी नगर,
दिल्ली-110092
दूरभाष-9013379808, 9650914297
वेब साइटः www.yugsetu.com
ई.मेल : yugsetu@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक और संपादक डॉ. ओम प्रकाश शर्मा द्वारा, जी 21, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-92 से प्रकाशित एवं ग्राफिक प्रिंट बी-77, गणेश नगर, पाण्डव नगर काम्प्लेक्स, दिल्ली-92 से मुद्रित।

इस माह

लोकमंच 4
संपादकीय 6
विचार दर्शन
मनुष्य जीवन में सद्गुणों का महत्त्व 9
विमर्श
महिला लेखन के सूत्र 13
लोक परलोक
मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम 16
भाव-प्रवाह
ब्रह्मांडीय ऊर्जाओं में ईश्वर 17
स्वतंत्रता संग्राम
क्रांति का दूसरा नाम भगत सिंह 20
राजनीति
दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता 22
भाषा-चिंतन
तीस से ज्यादा देशों में हिन्दी 25
कविताएँ
ऊँचाई, न चुप हूँ न गाता हूँ, याद 26
दूध में दरार पड़ गई, कौरव कौन पांडव
कुपथ रथ दौड़ता जो, भटका हुआ कारवाँ
सामयिकी
मैदान में जाने से पहले हार का डर 28
बिहार में वंशवादी नेताओं की जमात 30
दर्शन
लोकतंत्र के संसदीय स्वरूप में सुधार 32
लोकसाहित्य
लोक साहित्य में रिश्ते-नाते 34
धरोहर
तात्या टोपे की देशभक्ति 38
मुद्दा
चीनी कंपनियों की भारत में जासूसी 39
स्मरण
बेबाक खुशवंत सिंह 41
परदेश
ओबामा प्रशासन में फोन टेपिंग 47
कार्यक्रम 48
विविध 50

कुल पृष्ठ आवरण सहित 52

युग सेतु में लेखकों के प्रकाशित आलेखों के विचारों से संपादक या प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद का निबटारा दिल्ली न्यायालय में होगा।

लोक मंच

राजनीति से परे रहें अन्ना

रामलीला मैदान में तृणमूल कांग्रेस की रैली में अन्ना हजारे ने शामिल न होकर दूरदर्शी फैसला किया। अन्ना की छवि एक समाजसेवी एवं आंदोलनकर्ता की ही है। लोकपाल के लिए आंदोलन में उनके साथ रहे प्रमुख लोग अरविन्द केजरीवाल, जनरल वी.के. सिंह, मनीष सिसौदिया, कुमार विश्वास आदि भिन्न-भिन्न जगह राजनीतिक दलों में शामिल हैं। ममता बनर्जी की रैली में न जाने का फैसला अन्ना ने अंत समय किया था। ज्यादा दूरदर्शिता तब होती, जब रैली में जाने की बात ही नहीं होती। संभवतः कम भीड़ की वजह से अन्ना ने फैसला टाला। वे किसी भी दल से किसी भी रूप में जुड़ेंगे तो बाकी लोगों के समर्थन से वंचित हो जाएँगे। उनकी विश्वसनीयता को धक्का लगेगा। किसी भी दल से थोड़े-अधिक मुद्दों पर सहमति वह भी कार्यान्वयन से परे, कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है आज के माहौल में। इसलिए रामलीला मैदान में अन्ना हजारे के आने की खबर के बावजूद भीड़ का कम होना अन्ना को ऐसे फैसलों से बचने की जरूरत दर्शाता है। फिर राजनीतिक दल अपनी-अपनी राजनीति के अनुसार काम करते हैं। लेकिन समाज में राजनीति से परे व्यापक सुधार की आवश्यकता है, जिसमें अन्ना हजारे जैसे लोगों की महती भूमिका हो सकती है।

हीरा चटर्जी, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

कलाम के दो फैसले

भारत के संसदीय लोकतंत्र में अवमूल्यन के बावजूद राष्ट्रपति अधिकतर उच्चशिक्षित ही बने हैं। ज्ञानी जैल सिंह कम पढ़े-लिखे थे, पर व्यावहारिक जानकार थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. राधाकृष्णन से लेकर के.आर. नारायणन और अब्दुल कलाम तक सभी उच्च शिक्षित थे। लेकिन उचित फैसले लेने में ऐसे लोग भी गाहे-बेगाहे चूक जाते हैं। राष्ट्रपति बनने पर कलाम ने राष्ट्रपति भवन को सामान्य लोगों की पहुँच के नजदीक लाकर स्वयं को जनोन्मुख बनाया। लेकिन उनके दो फैसले उनकी कार्य कुशलता पर प्रश्न-चिन्ह लगाते हैं, जिन्हें बाद में सुप्रीम कोर्ट ने भी ठीक नहीं माना। पहला, यूपीए सरकार आने के ठीक बाद पाँच राज्यपालों की बर्खास्तगी और दूसरा, 2004 में बिहार में राज्यपाल बूटा सिंह की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति शासन लगाने का फैसला। ये दोनों फैसले तत्कालीन यूपीए सरकार के थे, फिर भी दोनों में राष्ट्रपति की स्वीकृति अहम मायने रखती थी। बिहार विधान सभा भंग करने की स्वीकृति राष्ट्रपति ने अपनी रूस यात्रा के दौरान लगभग अर्धरात्रि में दी। राज्यपाल राष्ट्रपति का प्रतिनिधि होता है और राष्ट्रपति शासन भी राष्ट्रपति के नाम से चलता है। दोनों फैसलों की स्वीकृति से पूर्व केन्द्र सरकार से इनके औचित्य समझने का प्रयास करना चाहिए था। राज्यपाल सुंदर सिंह भंडारी की रिपोर्ट पर बाजपेयी सरकार द्वारा बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू करने के निर्णय को तत्कालीन राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने कैबिनेट को पुनर्विचार के लिए लौटा दिया था। वाजपेयी सरकार ने राष्ट्रपति का सम्मान करते हुए दुबारा उनके समक्ष यह अनुशंसा नहीं रखी। इस प्रकार केन्द्र सरकार चाहकर भी लालू सरकार बर्खास्त न कर पायी। लेकिन कलाम ने उक्त दोनों मामले में 'तटस्थ' भूमिका निभायी। अगर वे चाहते तो सुप्रीम कोर्ट में जाने से पहले इन दोनों फैसले को टलवा सकते थे। जाहिर है कि जब कलाम को एनडीए द्वारा राष्ट्रपति का उम्मीदवार बनाया गया, तो कम्युनिस्ट पार्टियों ने उन्हें अराजनीतिक यानी राजनीतिक समझ न रखने वाला व्यक्ति कह कर विरोध किया था। यह अलग बात है कि कम्युनिस्टों की 'राजनीतिक समझ' अपने हित के लिए किसी भी हद तक जाने तक सीमित रहती है, लेकिन कलाम ने जिम्मेवार होते हुए भी तटस्थता का रुख अपनाकर गलत निर्णय होने दिया। बहुत ही कम मौके आते हैं, जब राष्ट्रपति या राज्यपाल को सरकार, न्यायालय, संसद से परे अपने कुशल निर्णय व जरूरी सक्रियता से मिसाल कायम करनी होती है। दुर्भाग्य से इस पद पर बैठे लोग संवेदनशील मुद्दों के प्रति निष्क्रिय व भयग्रस्त बने रहते हैं और कुछ राजनीतिक स्वार्थों के प्रति सक्रिय। कलाम का मामला तो और भी अलग है, उन्हें तो एनडीए ने बनवाया था और ऐसे कार्यों के बावजूद यूपीए ने उन्हें दुबारा राष्ट्रपति नहीं बनाया।

शंभु सिंह, छपरा, बिहार

प्रशासनिक तंत्र को सुदृढ़ करने का प्रयास नहीं

दिल्ली में सरकार बनाने से लेकर हटने तक आम आदमी पार्टी ने हड़बड़ी की। एक तो जैसे सरकार बनी, उसका जनादेश नहीं था। आम आदमी पार्टी की ओर से कहा भी गया था कि भाजपा-कांग्रेस से न समर्थन लेंगे और समर्थन देंगे। उनका यही स्टैण्ड सही था। फिर जिसके खिलाफ सबसे मुखर जनादेश था, उसी से मिलकर सरकार बनायी। इससे सरकार में जाने की तीव्र लालसा दिखी। दूसरा, विकेन्द्रीकरण की बात करने वाली आम आदमी पार्टी का राष्ट्रीय संयोजक यानी सर्वेसर्वा और दिल्ली विधायक दल के नेता के रूप में मुख्यमंत्री दोनों पद पर एक ही आदमी को बैठा दिया गया। 'आप' ने एक क्षणिक व छोटी सफलता की शुरुआत की थी। अभी लंबा संघर्ष करना था। लेकिन 'आप' संघर्ष की राह छोड़कर अल्पमत व कांग्रेस की बैसाखी वाली सरकार की डगर तय करने आ गई। जिन्हें संघर्ष-आंदोलन प्रिय हैं, वे सरकार से बाहर रहते। केजरीवाल की जगह कोई दूसरा सरकार का नेतृत्व करता और

केजरीवाल के नेतृत्व में संघर्ष का आगाज पूरे देश में होता तो आज दूसरा मुकाम होता। जनता दरबार से लेकर भ्रष्टाचार तक में सरकार के कार्य आशाजनक नहीं थे। सोमनाथ भारती प्रकरण, बिजली व पानी बिल की आधी माफी और दर कम करना, लोकपाल बिल पर असमंजस में पार्टी का रुख कोई दीर्घकालिक परिणाम देनेवाला भी नहीं लगा। लगा जैसे जल्दी-जल्दी कुछ कार्यों को करके श्रेय लेने तक राजनीति सीमित है। वास्तव में सुपरिवर्तन तब तक संभव नहीं है जब तक पूरे सिस्टम को ठीक न किया जाए। इस दिशा में आम आदमी पार्टी के उनचास दिनों की सरकार ने आरंभिक चरण भी नहीं बढ़ाए, फिर भी यदि लगता है कि इसी दरम्यान बहुत-कुछ किया तो यह एक खुशफहमी है। यह तो अच्छा हुआ कि किसी न किसी बहाने सरकार से अलग हटने की समझ जल्दी आ गई जिससे आम आदमी पार्टी फिर अपनी पुरानी रफ्तार हासिल करने की ओर बढ़ी है।

सुदेश सिंह, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

वाराणसी व बड़ोदरा में से किसे छोड़ेंगे मोदी?

अरविन्द केजरीवाल ने नरेन्द्र मोदी के खिलाफ चुनाव लड़ने का एलान क्या किया, मोदी गुजरात की एक सुरक्षित सीट बड़ोदरा से चुनाव लड़ने वापस चले गए। उनकी अपनी लोकप्रियता की हवा केजरीवाल के चुनाव लड़ने की घोषणा-मात्र से डिग गई। एक होशियार राजनीतिज्ञ की तरह उन्होंने तुरंत दूसरी सीट चुन ली। पहली सीट की घोषणा में जितनी देरी हुई, दूसरी सीट की घोषणा में उतनी ही शीघ्रता। एक की देरी और दूसरे की जल्दी में केजरीवाल एक कारण थे। लेकिन अब नरेन्द्र मोदी को यह बताना चाहिए कि यदि वे दोनों जगह से जीत गए, जिसकी पूरी संभावना है, तो किस सीट से इस्तीफा देंगे? हालाँकि यह अभी बताने की मजबूरी नहीं है, लेकिन पूरे देश की तस्वीर-तकदीर बदल देने की समयवार योजना बताने वाले मोदी को वाराणसी और बड़ोदरा की जनता को चुनाव के बाद की तकदीर बता देनी चाहिए कि उनके सांसद के तौर पर नरेन्द्र मोदी भाग्य में लिखे हैं या नहीं? वस्तुतः राजनीति में मोदी जितने मुखर वक्ता हैं उतने ही अपने गोपनीय एजेंडे पर काम करने वाले शांत नेता भी। ऐसे में बड़ोदरा और बनारस वाले ही यह तय करें कि मोदी जी के छोड़ने से पहले, कौन उन्हें पहले छोड़ेगा? क्योंकि यह संभव नहीं कि दोनों सीट-सौतन एक साथ पकड़ के उन्हें रख सकें।

मुकुल कुमार, संगम विहार, दिल्ली

नौसेना प्रमुख की नियुक्ति में देरी अनुचित

नौसेना प्रमुख का पद एक महीना से रिक्त है। एडमिरल डी के जोशी के नैतिकता के आधार पर त्याग-पत्र देने के बाद से सरकार ने नियुक्ति नहीं की है। इसी बीच लोकसभा चुनाव की घोषणा हो गई। फलतः नियुक्ति लटक गई। लेकिन स्वास्थ्य-सुरक्षा के मामले आपातकालीन सेवा होते हैं। लंबे समय तक चुनावी आचार संहिता के कारण भी इस नियुक्ति को रोके रखना उचित नहीं है और न ही इस नियुक्ति से चुनाव पर कोई प्रभाव पड़ना है। ऐसे में चुनाव आयोग की राय-मशविरा से केन्द्र सरकार को अविलंब इस पद पर पूर्णकालिक नियुक्ति करनी चाहिए। ऐसी नियुक्तियों को प्रक्रियागत उलझावों से मुक्त रखने की आवश्यकता भी है।

रेणु बतरा, फरीदाबाद, हरियाणा

विकास-मॉडल की बानगी

गुजरात के कॉलेजों के लिए अध्यापकों की केन्द्रीकृत रिक्तियाँ निकलती हैं। डिग्री कॉलेजों में अध्यापन करने वाले का नाम 'अध्यापक सहायक' रखा गया है। गुजरात उच्च शिक्षा आयुक्त के वेबसाइट पर ये रिक्तियाँ दर्शायी जाती हैं। पहले इसका विस्तृत विज्ञापन और आवेदन का प्रोफार्मा वेबसाइट पर सिर्फ गुजराती में ही था। आवेदन करने की अंतिम तिथि बीत जाने के बाद अंग्रेजी में विस्तृत विज्ञापन है। लेकिन अंतिम तिथि से पहले बहुत बार कोशिश करने पर भी हिन्दी-अंग्रेजी में इसका विज्ञापन नहीं मिल पाया, इसका कारण क्या है - समझ में नहीं आया। क्या यह सुनियोजित साजिश है या प्रत्याशित आकांक्षा कि गुजराती जाननेवाले जो प्रायः गुजरात के ही होंगे, वही आवेदन कर सकें। वैसे भी जो समेकित वेतन इसके निर्धारित है, वह कुल 16500 रुपये होने के कारण शायद ही कोई इतनी बेरोजगारी के बावजूद भी बाहर का सुयोग्य व्यक्ति वहाँ पढ़ाने की जुर्रत करे। ये अस्थायी पद हैं। पता नहीं क्यों गुजरात सरकार यूजीसी द्वारा निर्धारित पूरे वेतनमान पर स्थायी नियुक्तियाँ नहीं करती? न्यूनतम मजदूरी तो गुजरात में कम है ही एम.ए., एम.फिल, पीएच.डी एवं नेट उत्तीर्ण लोगों का वेतन भी लगता है पूरे देश में सबसे कम यहीं रखा गया है और इसी वेतन पर पाँच साल तक रखकर उन्हें हमेशा अस्थायी बनाए रखने की रणनीति बनाई गई है। यही है गुजरात के विकास-मॉडल की एक छोटी बानगी।

ओम प्रकाश, फरीदाबाद

कैदियों का पारिश्रमिक कम क्यों?

भारत के अधिकांश जेलों में कैदियों की रोजाना मेहनत का मूल्य बहुत कम दिया जाता है। यह अकुशल, अर्द्धकुशल व कुशल व्यक्ति के लिए अलग-अलग होता है। अकुशल के लिए दिन भर परिश्रम करने पर कहीं 14 रुपये मिलते हैं तो तिहाड़ जेल में 70 रुपये। तिहाड़ में कुशल कैदी को दिहाड़ी 99 रुपये मिलते हैं। जाहिर है कि तिहाड़ जेल भारत का बेहतर जेल है और राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में स्थित होने के कारण इस पर नजर रहती है। दिहाड़ी बढ़ाने को लेकर मामला कोर्ट में जाता रहा है, लेकिन सरकारी रवैया कैदियों के प्रति संवेदनहीन है। सरकारें यह दावा जरूर करती हैं कि वे जेल में कैदियों के व्यक्तित्व परिष्कार और पुनर्वास-सुधार के लिए प्रतिबद्ध हैं। तरह-तरह की योजनाएँ बनती हैं, धार्मिक-आध्यात्मिक कार्यक्रम होते भी हैं। लेकिन भ्रष्टाचार के कारण कैदियों को न खाना ढंग का मिल पाता है, न साफ-सफाई, रहन-सहन की कोई सुव्यवस्था है। कैदी जो परिश्रम करते हैं, उसका उन्हें उचित पारिश्रमिक मिले, जिनसे उनका अपना व परिवार के लिए भविष्य निधि निर्मित हो, क्योंकि जेल से परे भी परिवार होता है और जेल से बाहर अपनी जिंदगी भी। अतः पारिश्रमिक की ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिए, जिससे कैदी व उसके परिवार को भविष्य में आर्थिक संबल प्राप्त हो। सरकारों द्वारा सुधार के रस्मी कार्यक्रम चलाते रहने के साथ-साथ कैदियों का बहुस्तरीय शोषण-उत्पीड़न जारी है।

सुधीर पांडेय, नांगलोई, दिल्ली

सत्यांश

शिक्षकरोधी-जीवनविरोधी नियुक्ति-प्रणाली

ठीक वैसे ही दिल्ली विश्वविद्यालय भारत का बड़ा विश्वविद्यालय है, जैसे भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र। दोनों के बड़प्पन में गुणवत्ता की बेहतर स्तरीयता से अधिक संख्यात्मक मात्रा-बल का योग है। दिल्ली विश्वविद्यालय में 89 विषयों के विभाग और 87 कॉलेज तथा लाखों छात्र एवं हजारों शिक्षक व शिक्षणेतर कर्मचारियों का विशालकाय ढाँचा इसे बड़े में शुमार कराता है। समयबद्ध सत्र संचालन, अद्यतन पाठ्यक्रम, अध्ययन-अध्यापन की सुनियोजित सुविधाएँ इत्यादि चाहे वैश्विक स्तर पर कोई ऊँचा स्थान न रखती हों, पर अखिल भारतीय स्तर पर तो ये ही विश्वविद्यालय की सर्वश्रेष्ठता के नमूने हैं। नवनिर्मित चार साला पाठ्यक्रम भी इसके अग्रगामी होने का प्रमाण है जो समर्थन-विरोध के भँवर से निकल कर लागू हो चुका है। यह बहुतों के लिए विस्मयकारी और आकर्षण का कोर्स है। इन सबके अलावे विश्वविद्यालय की बिल्कुल स्वायत्त-स्वतंत्र शिक्षक नियुक्ति-प्रणाली इसकी सर्वश्रेष्ठता में चार चाँद लगाती है।

यों तो केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की अपने-अपने स्तर पर नियुक्तियाँ करने के चलन के बावजूद सब जगह नियुक्ति-प्रक्रिया करीब एक-सी है, लेकिन दिल्ली विश्वविद्यालय इस एक-सी से कई मामले में भिन्न है। दो-तीन वर्षों के बाद पुनः यहाँ स्थायी नियुक्ति का सिलसिला शुरू हुआ है, पर इस बार खास बात यह है कि आवेदनों की छँटनी के लिए अंक प्रणाली निश्चित की गई है। शैक्षणिक योग्यता में कॉलेजों के लिए पचपन अंक और विश्वविद्यालय के विभागों के लिए सैंतालिस अंक नियत किए गए हैं। कॉलेज के लिए प्रकाशित सामग्री हेतु पच्चीस अंक और विश्वविद्यालय के विभाग के लिए तैंतीस अंक रखे गए हैं। इसी प्रकार दोनों जगह बीस अंक अध्यापकीय अनुभव के लिए तय किए गए हैं। इन सौ अंकों में से कॉलेज में साक्षात्कार हेतु साठ अंक और विश्वविद्यालय के विषय-विभागों में साक्षात्कार हेतु कम-से-कम पचहत्तर अंक होना आवश्यक है। तभी साक्षात्कार के लिए बुलावा आ सकता है। विश्वविद्यालय में नियुक्ति के लिए बढ़ती भीड़ को देखकर छँटनी का यह मानक बनाया गया है। इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। परंतु यह ऊपरी या बिल्कुल फुनगी की छँटाई का प्रयास है। नियुक्ति-प्रक्रिया का मूलाधार जैसा पहले था, अब भी वैसा ही है, जबकि इसमें आमूलचूल परिवर्तन ज्यादा जरूरी है। चूँकि विश्वविद्यालय प्रशासन, संबंधित विषयों के विभाग तथा कॉलेज के प्रबंधन-प्रशासन का नियुक्ति संबंधी हितोद्देश्य इसी बुनियाद पर टिका हुआ है, अतः बदलने की कौन कहे, इसे ही तरह-तरह से पुष्ट करने का साहस किया जाता है।

शिक्षकों की नियुक्तियाँ दो स्थान-स्तरों कॉलेज व विश्वविद्यालय के विषय-विभाग के लिए अलग-अलग तरीके से होती हैं। कॉलेज की चयन समिति में प्रबंधन, प्राचार्य एवं संबंधित विषय का प्रभारी कॉलेज की ओर से होता है, जबकि विश्वविद्यालय की ओर से कुलपति का नामिती, संबंधित विषय का विभागीय विशेषज्ञ एवं विभागाध्यक्ष होता है। जरूरत के मुताबिक एक-दो लोग घट-बढ़ जाते हैं। यहाँ कॉलेज प्रबंधन-प्रशासन एवं विश्वविद्यालय प्रशासन तथा संबंधित विषय विभाग जैसी नियुक्ति चाहता है, कर लेता है, जिसमें अहम भूमिका विषय-विशेषज्ञ की होती है जो विश्वविद्यालय ही के संबंधित विभाग का होता है। विश्वविद्यालय के विभागों में शिक्षकों की नियुक्ति में विश्वविद्यालय प्रशासन खासकर कुलपति व उनके शागिर्द तथा संबंधित विभाग के अध्यक्ष एवं वरिष्ठ प्राध्यापक की भूमिका प्रमुख होती है। विश्वविद्यालय के बाहर के विषय-विशेषज्ञ इन्हीं के आपसी तालमेल से बुलाये जाते हैं। इस प्रकार यह नियुक्ति-प्रक्रिया एकदम विश्वविद्यालयी परिधि में सिमटी व स्वकेन्द्रित रूप में पूर्ण होती है।

दिल्ली विश्वविद्यालय में कॉलेजों में ही रिक्तियाँ अधिक होती हैं, लेकिन दुर्भाग्य से सभी कॉलेजों के लिए एकसाथ केन्द्रीकृत नियुक्ति करने की परंपरा-पद्धति नहीं है। हरएक कॉलेज अपना विज्ञापन निकालता है, आवेदन माँगता है, साक्षात्कार करता है और नियुक्ति करता है। कॉलेजों में एक पद के लिए भी उतनी ही कार्यवाही करनी पड़ती है, जितनी दस-बीस पदों के लिए होती है। एक विषय में एक से अधिक पद भी होते हैं, लेकिन यह दहाई तक अपवादस्वरूप ही जा पाता है। अलग-अलग जगह पर ही सही, नियुक्तियाँ कॉलेजों में अधिक होने के कारण नियुक्ति की आस लगाए शैक्षणिक योग्यताधारी एक-एक, दो-दो पदों के लिए यहाँ-वहाँ आवेदन करते हैं। आवेदन के साथ सभी प्रमाण-पत्रों की छायाप्रतियाँ जो अमूमन एक दर्जन तो होती ही हैं, प्रकाशनों की सूची तथा फोटोग्राफ के अलावे सामान्य श्रेणी के लिए 250-250 रुपये और अनुसूचित जाति-जनजाति व विकलांगों के लिए 100-100 रुपये का बैंक ड्राफ्ट नत्थी करना पड़ता है। जितने कॉलेजों में आवेदन, उतने ही ड्राफ्ट, उतने ही फोटोग्राफ और छायाप्रतियों के बंडल जमा करने पड़ते हैं। यदि अभ्यर्थी कहीं अस्थायी रूप में भी कार्यरत है तो वहाँ से अपना आवेदन अग्रसारित कराना पड़ता है। साक्षात्कार के लिए सामान्यतः प्रौढ़ उम्र के भारी योग्यताधारियों को सैकड़ों के साथ पंक्तिबद्ध होकर जगह-जगह धक्का खाना पड़ता है। इन सबमें उम्मीदवारों का समय, पैसा और मानसिक ऊर्जा का ह्रास होता है। बेरोजगार-परेशान अभ्यर्थियों के जले पर यह नमक होता है, फिर भी नौकरी चाहिए होती है जिसकी संभावना यहाँ 'सतत' रहती है, अतः इसी प्रक्रिया से किसी तरह पाने का प्रयास चलते रहता है। कुछएक लोग तो सदैव ऐसे होते हैं जो इस नियुक्ति प्रणाली को ऊबाऊ-थकाऊ व सुशिक्षकरोधी मानते हैं, लेकिन बेबसी के कारण इसी में अपनी नियुक्ति भी चाहते हैं। दूसरा कोई रास्ता नहीं है और जो हो सकता है, वह ज्यादा कंटकाकीर्ण है। अभ्यर्थी 30-35-40-45-50-55 साल की उम्र में बहुत सारी उपाधियों को लपेटे, बेरोजगारी से तंग कुछ पाने के लिए चक्कर लगाने के सिवा कर भी क्या सकता है?

ऐसी नियुक्ति-प्रक्रिया में विश्वविद्यालय व कॉलेज को ड्राफ्ट से आमदनी और मनचाही नियुक्ति का सपना साकार होता है। यदि सभी

कॉलेजों की नियुक्ति एक केन्द्रीकृत चयन प्रणाली द्वारा की जाए, जैसी कि पाठ्यक्रमों में दाखिले के लिए अब कुछ हद तक केन्द्रीकृत प्रक्रिया चल रही है, तब कॉलेजों की भूमिका खत्म हो जाएगी। समय, धन व शैक्षिक ऊर्जा अलग-अलग चयन प्रक्रिया के कारण बर्बाद होता है, जिसे अकादमिक व शिक्षकीय कार्य में लगाया जाए तो विश्वविद्यालय व कॉलेज की महिमा बढ़ेगी। परंतु विश्वविद्यालय प्रशासन व विश्वविद्यालय विभागों एवं कॉलेजों के हाथ में नियुक्ति रखने के लिए यह सब चल रहा है। संकीर्ण हितों की आसान आपूर्ति के लिए यह आत्मकेन्द्रित प्रक्रिया अपनायी गई है। यह अपने उद्देश्यों के प्रति जागरूक विश्वविद्यालय-कॉलेज के प्रशासन के अनुकूल तो है, पर सुयोग्य, कर्मठ अभ्यर्थी की दृष्टि से घोर कष्टकारी ही नहीं, वरन् शिक्षा-ऊर्जा का सर्वनाशक-मारक भी है।

भारत में अनेक खामियों के बावजूद संघ लोक सेवा आयोग प्रशासनिक अधिकारियों का चयन करता है, वैसे ही विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के लिए केन्द्रीय स्तर पर नियुक्ति प्रक्रिया आरंभ करना उपयुक्त है। इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग है ही, जो प्रति वर्ष दो बार नेट यानी व्याख्याता पात्रता परीक्षा लेता है, उसी परीक्षा के साथ मौखिकी का भी एक प्रश्न-पत्र रखा जा सकता है। लिखित व मौखिक परीक्षा के संयुक्त अंक जो दोनों के लिए अलग-अलग न्यूनतम निर्धारित हों, अभ्यर्थी द्वारा अर्जित करने पर उत्तीर्ण किया जा सकता है। देखा गया है कि जो यूजीसी नेट अथवा स्लेट परिश्रम के बल पर समय से पास कर जाते हैं, वे भी चापलूसी, खुशामद सहित अन्य जुगाड़ के अभाव में दस-बीस साल नौकरी के लिए लटके रहते हैं। नेट-स्लेट की परीक्षा के परिणाम भी पढ़ाई के बनिस्बत किसी रूप में 'पहुँच' रखने वालों के लिए आसान बनने के प्रत्यक्ष उदाहरण अकादमिक जगत में प्रकट होते रहे हैं। नेट-स्लेट की अनिवार्यता बार-बार हटाने व बरकरार रखने की कवायद 'इस कोठी का चावल उस कोठी में और उस कोठी का चावल इस कोठी में' करना कुछ मठाधीशों के कुटुम्ब-नातेदारों व चंपुओं को शैक्षिक कार्य में ढकेलने का नुस्खा बना है।

हजारों उम्मीदवार नौकरी के लिए सैकड़ों जगह परिपक्व शिक्षा व प्रौढ़ आयु में अपनी बेरोजगारी के साथ भटकते हैं, इससे बड़ा शर्मनाक कुछ नहीं हो सकता। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को ही विश्वविद्यालय सेवा आयोग बनाकर केन्द्रीकृत परीक्षा द्वारा विश्वविद्यालयों को जरूरत के हिसाब से चयित उम्मीदवारों की सूची को संस्तुत करने का नियम हो, जिसमें परीक्षा-परिणाम, उम्मीदवार की रैंकिंग व रुचि का भी ध्यान रखा जाए। नेट-स्लेट का रिजल्ट भी उसी अनुपात में हो, जिस अनुपात में रिक्तियाँ हों। फिर अनावश्यक भीड़ नहीं होगी, विश्वविद्यालयों में बड़े पैमाने पर पदों के खाली रहने की स्थिति नहीं बनेगी। योग्य शिक्षकों का समय पर चयन होगा, इससे अच्छे छात्र बनेंगे। विश्वविद्यालय परिसर नियुक्ति की राजनीति से मुक्त होने के कारण राजनीतिक कुचालों से रिक्त होकर साफ-स्वच्छ होंगे और यह रोना भी सुनाई नहीं देगा कि भारत के विश्वविद्यालय श्रेष्ठ नहीं हैं। वस्तुतः इससे सबका सीधा भला होगा और वर्चस्व बनाए रखनेवाले नौकरशाह, शिक्षाविद् व शिक्षा माफिया तत्वों से निजात मिलेगी। ध्यातव्य है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में जहाँ पैंतालीस प्रतिशत स्थायी पद रिक्त हैं, वहीं यूजीसी जॉब पोर्टल पर 48685 अभ्यर्थी पंजीकृत हैं और आवश्यक नहीं कि सारे उम्मीदवार पंजीकृत हों ही।

केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के लिए केन्द्र सरकार व राज्य विश्वविद्यालयों के लिए राज्य सरकार को केन्द्रीकृत नियुक्ति-प्रक्रिया का प्रावधान कर नियुक्ति की धाँधली पर रोक लगानी चाहिए। कुछ हद तक राज्यों में महाविद्यालयों के लिए केन्द्रीकृत नियुक्ति प्रणाली लागू है, जिसे अधिक सटीक बनाने का आवश्यकता है। इससे उच्च शिक्षित बेरोजगारी तो कम होगी ही, शैक्षिक ऊर्जा का शोषण-प्रक्षेपण कम होगा, सरकारी धन का शिक्षा के लिए सदुपयोग हो सकेगा।

विश्वविद्यालयी शिक्षा की दुरावस्था का मुख्य कारण नियुक्ति प्रक्रिया है जो अध्येताओं-अनुसंधित्सुओं को शिक्षक बनने से पहले ही पथभ्रष्ट कर देती है, अध्ययन-अनुसंधान के प्रति निरुत्साही बना देती है। फलतः अनुसंधानों की मात्रा में वृद्धि के बावजूद उनका स्तर गिरते-गिरते घटिया हो गया है। आज समूचा तो नहीं, लेकिन विश्वविद्यालयी शोध का बहुलांश शोध है ही नहीं, फिर भी इन पर भारी-भरकम उपाधियाँ आवंटित हैं। ये उपाधियाँ भी शिक्षक-नियुक्ति में तभी कारगर हो पाती हैं, जब शोध-कार्य के साथ अन्य अनुसंधानेतर जुगाड़ कार्य भी किया जाए। इस प्रकार शोध की निम्नतर प्रवृत्ति से लक्षित नौकरी तो मिल सकती है, पर इसका कोई शैक्षणिक-सामाजिक मूल्य नहीं होता। ऐसी शोधवृत्ति जोश-उमंग के साथ कुछ या बहुत-कुछ कर गुजरने की युवा-ऊर्जा से प्रायः सिक्त नहीं होती। हाँ, चापलूसी, खुशामद, चुगलखोरी की दुष्प्रवृत्ति को उद्दीप्त करती है, अन्तर्बाह्य गुटबंदी में विखण्डित नातेदारी, रिश्तेदारी, जातिवाद व क्षेत्रवाद का दूषित माहौल तैयार करती है। सरस्वती मंदिर तुल्य ज्ञान-केन्द्र संकीर्णता व क्षुद्रता के मानस-स्थल बन जाते हैं।

तथ्यों, सूचनाओं सहित विषय की जानकारी रखना और बात है और खुली चेतना का विद्यावान बनना अलग गुण। दुर्भाग्य से खुली चेतना से ऐसे खेमेबाज भी खाली है, जिनकी धड़ेबाजी का विन्यास उद्घोषित रूप में जड़ता, रूढ़िग्रस्तता आदि के विरोधस्वरूप हुआ कहा-माना जाता है। यहाँ के तथाकथित दक्षिणपंथी यदि परंपरागत तौर पर 'जड़' हैं तो स्वघोषित वामपंथी आधुनिक रूप में 'जड़वत'। मध्यमार्गी यथास्थिति में अवसर टटोलने के फिराक में रहते हैं। ऐसे में पूरा शिक्षा-प्रांगण घूम आएँ, पर न असली दक्षिणपंथी मिलता है और न वामपंथी। साक्षी दृष्टि वाले समदर्शी को आजकल के ज्ञान-व्यवहार के वातावरण में अप्रासंगिक होते-जाने के कारण ढूँढ़ना मूर्खता है। ऐसी खोजों का निराशापूर्ण निष्कर्ष है कि कुछ देर लिए मान लिए गए अपने पंथ का न सच्चा मिलता है और न विरोधी पक्ष का कोई सच्चा विरोधी। ढोंगी दक्षिणपंथी की बजाय यदि सही कम्यूनिस्ट ही मिल जाए, तो उसी से प्रियता स्थापित हो सकती है, क्योंकि यहाँ प्रियता का आधार पंथ नहीं, सच्चाई होगी, लेकिन अपवादस्वरूप भी पक्का वामपंथी नहीं मिलता, अभिजात्य व शौकिया किस्म के कम्यूनिस्ट मिलते हैं। कुछ समय पहले तक बौद्धिक बनने के लिए कम्यूनिस्ट होने का अनिवार्य फैशन

काफी प्रचलित था। पक्का होना और पक्के होने का दावा करने में फर्क है, पर इस असली-नकली या अनुपंथी का फैसला कैसे होगा? जो भी हो, ये स्वयंभू पंथी शिक्षा-क्रिया मिश्रित आपसी स्वार्थपरक उठा-पटक के बावजूद यदि कभी 'गुरुत्व-शिष्यत्व की गरिमा पर आघात' देखते हैं तो एकजुट हो जाते हैं। एक-दूसरे के खिलाफ शिक्षकों को ही नहीं, छात्रों तक को खड़ा करने में माहिर-मास्टर होते हैं; लेकिन अपने व विरोधी गुटों के परिजनों के परस्पर हितों के प्रति तीव्र संवेदनशील होते हैं, इनकी लड़ाई परिवारजनों की आपसी भलाई में आड़े नहीं आती। बाहरी आदमी के लिए पैठ बनाना दुर्भर होता है, जहाँ न प्रतिभा, बुद्धि-विवेक काम आता है और न अनैतिक, पर प्रचलित 'पराक्रमपूर्ण सिफारिश'। यह अंशतः भी अनायास नहीं है कि भारतीय शैक्षिक परिसर जिनमें दिल्ली विश्वविद्यालय अग्रगण्य है, उसका अध्यापकीय स्टाफ वंशवादी परिलक्षणों-बेटे-दामादों, बहू-बेटियों, भाई-भतीजों, सगे-संबंधियों सहित चहेतों से भरा-पूरा है, जो अन्यों को आक्रांत करता है। यह सांख्यिक शोध का विषय है कि ऐसी नियुक्ति किस आयु में, कब, कैसे और किनके द्वारा हुई है। विश्व में पहले कभी जो मेधावी पच्चीस साल की उम्र में प्रोफेसर बनता था, वह प्रायः आगे चलकर कोई-न-कोई प्रसिद्ध कार्य जरूर करता था। यहाँ उच्चतर कक्षाओं का परीक्षा-परिणाम भी वंशवादी योग्यता को निखारता रहा है। संवेदनात्मक-रागात्मक भ्रष्टाचार के मानवीकरण का इससे अनुपम उदाहरण दुनियाँ में कहीं और नहीं मिलेगा। भारत के राजनीतिक दलों पर वंशवादी राजनीति की परिपाटी में जो आरोप टिकट व संगठनात्मक पदों के वितरण में लगते हैं, उनसे कई गुणा अधिक वंशवादी परंपराओं सहित अन्य कुप्रवृत्तियों को धारण करके दिल्ली विश्वविद्यालय फल-फूल रहा है। इसलिए जो हाल भारतीय लोकतंत्र का है, वही दिल्ली विश्वविद्यालय सहित बाकी का भी। बदनाम सिर्फ राजनीति है, पर काम का मतलब साधा है अकादमिक जगत के आचार्यों-पदधारियों ने।

हालाँकि केन्द्रीकृत एकमुश्त शिक्षक चयन-पद्धति में विषय-विशेषज्ञ की भूमिका व्यवस्थित होकर बेहतर ही होगी, लेकिन ये लोग कतई नहीं चाहेंगे कि सभी विश्वविद्यालयों के लिए एकसाथ नियुक्तियाँ हों। पद-विशेष की योग्यता-विद्वता के सिवा अन्य कोई गुण हो या ना हो, परंतु बहुत सारे लोग नियुक्ति-पदोन्नति जैसे स्वार्थों को पूरा करने के लिए इनके पीछे लगे रहते हैं। यह इन्हें पसंद भी आता है। इस समय ऐसों की और भी चाँदी है, क्योंकि दिल्ली विश्वविद्यालय के लगभग ढाई दर्जन कॉलेजों में अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष सहित पूरी प्रबंध समिति विश्वविद्यालय शिक्षकों के हाथ में है। इससे विश्वविद्यालयी घाघों का नियंत्रण अधिक मजबूत हुआ है। इन ढाई दर्जन कॉलेजों में आंशिक या पूर्णतः अनुदान दिल्ली सरकार का रहता है, अतः इनकी प्रबंध-समिति में दिल्ली सरकार को अपनी तरफ से नामों का पैनल भेजना होता है जो दिल्ली विधानसभा चुनाव के परिणाम से बनी केजरीवाल सरकार की हीलाहवाली और दिल्ली प्रशासन के लुंज-पुज रवैये के कारण अभी तक पूर्ण नहीं हो सका है। लेकिन विगत में दिल्ली सरकार द्वारा भेजे पैनल से बनी प्रबंध समिति में अधिकतर लोग ऐसे रह चुके हैं, जो शिक्षा की बजाय दलीय राजनीतिक सरोकारों के कारण पहचान रखते हैं।

विश्वविद्यालय सरकार के धन से चलते हैं, पर अपवादों को छोड़कर स्वायत्त हैं। इनकी स्वायत्तता तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति की स्वतंत्रता पर केन्द्रित है। स्वायत्तता-स्वतंत्रता का बेजा इस्तेमाल धड़ल्ले से हो रहा है। ऐसे में शिक्षक पद पर नियुक्ति कर-करा लेना कुछएक अतिदुराग्रहपूर्ण अपवादों को छोड़कर असंभव नहीं है, पर (सु)शिक्षक बनना काफी कठिन है। इसलिए शिक्षक पद पर कार्यरत तो हजारों हैं, पर वास्तविक शिक्षक कितने हैं? लगता है अब शिक्षक शब्द वास्तविक शिक्षक की गरिमा का बोध कराने में असमर्थ सिद्ध हो रहा है, इसलिए सुशिक्षक का प्रयोग करना पड़ा है। जो सेवा-मिशन या अत्यधिक रुचि के कारण अध्यापक बनना चाहते हैं, उन्हें यहाँ आकर धक्का लगता है। परंतु लाख टके का सवाल यह है कि जो शिक्षक पद पर नियुक्त हैं, वे शिक्षक हैं या जो अपने होने के कारण नियुक्ति से वंचित हैं, वे शिक्षक हैं? जाहिर है कि सरकार, छात्र व समाज-लोक के लिए जो नियुक्त हैं, वही शिक्षक होंगे।

हमारे विश्वविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन की चयन-प्रक्रिया शिक्षा-शिक्षकरोधी ही नहीं, जीवन-विरोधी भी है। इसलिए यहाँ के शिक्षार्थी व प्राध्यापक अपनी उच्च शिक्षा के बावजूद कितने संकीर्ण, स्वार्थी व पोपले हैं- यह देखने को मिलता है। परंतु ये लोग भी इसी प्रक्रिया की फसल हैं, अतः संस्कारवश इसी के अनुगमन की उम्मीद रखे जाने में इनका कम, 'शिष्टाचार' की विकसित परंपरा का अधिक योगदान है। जो लोग इन सब विकृतियों से परे रह सके हैं, वे ही अच्छे शिक्षार्थी-शिक्षक हैं और वर्तमान की ताकत और भविष्य के नियंता भी।

किसी भी व्यक्ति, विचार या संस्थान के बारे में एक प्रचलित सच होता है जो अधिकतर अनुभव-अनुभूति की आत्म-दृष्टि से विलग होता है। बहुतों में पृथक् अनुभव भी प्रचलित सच से विमुख होने की हिम्मत जागृत नहीं करा पाता। लेकिन इससे बहुमत के प्रचलित सच से आत्मानुभव का सच कमतर नहीं हो जाता। प्रचलित सच यही है कि भारत दुनियाँ का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और इसका दिल्ली विश्वविद्यालय भारत में श्रेष्ठ। भारतेतर प्रमाण-पत्रों व मेहमानों के ठप्पे से यह विचार और अधिक पुख्ता हुआ है। इसके साथ यह भी शोर है कि दिल्ली विश्वविद्यालय सहित भारत का कोई भी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता की लंबी वैश्विक सूची में सौ-दौ सौ क्रमांकों के दायरे में नहीं आ पाता। यद्यपि सर्वश्रेष्ठता को मापने का पैमाना समेकित रूप में उन्नत नहीं है, तब भी आधुनिक ज्ञानमापक निकष पर जब भारतीय विश्वविद्यालय खरे नहीं उतरते, तब आत्मोन्नत-विश्वोन्नत मापदंडों पर कहाँ टिकेंगे? फिर भी दिल्ली विश्वविद्यालय भारत में सर्वश्रेष्ठ तो है- 'गाछ न वृक्ष, वहाँ रेंड़ प्रधान', लेकिन यहाँ शिक्षा-संस्थानों की कमी नहीं है चाहे उनका स्तर जैसा हो। अपनी दृष्टि में दिल्ली विश्वविद्यालय 'बड़ा' है और अपनी दृष्टि से ही कोई बड़ा बनता है। बाहरवालों को यह श्रेष्ठ नहीं दिखता, तो इसमें विश्वविद्यालयवालों का क्या दोष? परंतु दिल्ली विश्वविद्यालय या कोई भी विश्वविद्यालय विश्वविद्यालयवालों की जागीर तो नहीं है। इसी कारण महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा इन दिनों बाकी कारनामों से परे अपने नए प्रकाशन 'वर्धा हिन्दी शब्दकोश' के कारण सवालों के घेरे में है और यह वाजिब प्रश्न-चिन्ह अधिकतर बाहरवालों ने और कुछएक भीतरवालों ने भी लगाया है। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के हमारे उस हिन्दी के संस्थान की अन्तर्दशा है जिसके जन्मदाता कोई 'विदेशी' मैकाले नहीं, भारत-भारतीय हैं। ❋

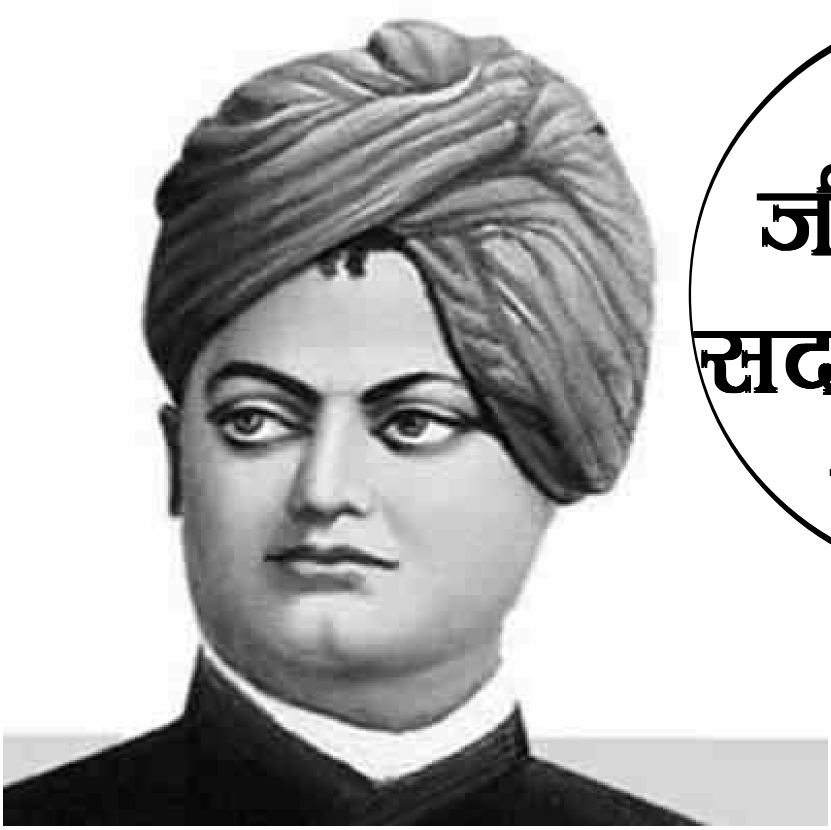

मनुष्य जीवन में सदगुणों का महत्त्व

बहुत दिनों पहले मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा था कि प्रशांत महासागर के एक द्वीप पुंज के निकट कुछ जहाज तूफान में फँस गये थे। 'सचित्र लन्दन समाचार' पत्रिका में इस घटना का एक चित्र भी आया था। तूफान में केवल एक ब्रिटिश जहाज को छोड़कर अन्य सभी भग्न होकर डूब गये। वह ब्रिटिश जहाज तूफान पार कर चला आया। चित्र में दिखाया है कि जहाज डूबे जा रहे हैं, उनके डूबते हुये यात्री डेक पर खड़े होकर तूफान से बच जानेवाले यात्रियों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। हमें इसी प्रकार वीर तथा उदार होना चाहिए।

जब भी अँधेरे का आक्रमण हो, अपनी आत्मा पर बल दो और जो कुछ प्रतिकूल है, नष्ट हो जायेगा; क्योंकि आखिर यह सब स्वप्न ही तो है। आपत्तियाँ पर्वत जैसी भले ही हो, सब कुछ भयावह और अंधकारमय भले ही दिखे, पर जान लो, यह सब माया है। डरो मत, यह भाग जायेगी। कुचलो और यह लुप्त हो जायेगी। ठुकराओ और यह मर जायेगी। डरो मत, यह न सोचो कि कितनी बार असफलता मिलेगी। चिन्ता न करो। काल अनन्त है। आगे बढ़ो, बारम्बार अपनी आत्मा पर बल दो। प्रकाश जरूर ही आयेगा। तुम चाहे किसी से प्रार्थना क्यों न करो, पर कौन तुम्हारी सहायता करेगा? जिसने स्वयं मृत्यु पर विजय नहीं पायी, उससे तुम किस सहायता की आशा करते हो? स्वयं ही अपना उद्धार करो। मित्र, दूसरा कोई तुम्हे मदद नहीं कर सकता, क्योंकि तुम स्वयं ही अपने सबसे बड़े शत्रु और स्वयं ही अपने सबसे बड़े हितैषी हो। तो फिर आत्मा का आश्रय लो। उठ खड़े हो जाओ, डरो मत।

वीरता के साथ आगे बढ़ो। एक दिन या एक साल में सिद्धि की आशा न रखो। उच्चतम आदर्श पर दृढ़ रहो। स्थिर रहो। स्वार्थपरता व ईर्ष्या से बचो। आज्ञापालक बनो। सत्य, मानवता और अपने देश के प्रति चिर काल तक निष्ठावान बने रहो, और तुम संसार को हिला दोगे। याद रखो- व्यक्ति और उसका जीवन ही शक्ति का स्रोत है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। ...दास लोग सदा ही ईर्ष्या के रोग से ग्रसित रहते हैं। हमारे देश का भी यही रोग है। इससे हमेशा बचो। सब आशीर्वाद और सर्वसिद्धि तुम्हारी हो।

वीरता

मित्रो! पहले मनुष्य बनो, तब देखोगे कि बाकी सभी चीजें स्वयं ही तुम्हारा अनुसरण करेंगी। आपस में घृणित द्वेष-भाव को- कुत्ते के सरीखे परस्पर झगड़ना तथा भूँकना छोड़कर भले उद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सच्ची वीरता का अवलंबन करो। तुमने मनुष्य योनि में जन्म लिया है, तो अपने पीछे कुछ स्थायी चिन्ह छोड़ जाओ - तुलसी आये जगत् में, जगत् हँसे तुम रोय। ऐसी करनी कर चलो, आप हँसे जग रोय।। अगर ऐसा कर सको, तभी तुम मनुष्य हो, अन्यथा तुम किस काम के हो।

''दुनिया चाहे जो कहे, मुझे क्या परवाह! मैं तो अपना कर्तव्य-पालन करता चला जाऊँगा''- यही वीरों की बात है। ''वह क्या कहता है'' या ''क्या लिखता है'' - यदि ऐसी ही बातों पर कोई रात-दिन ध्यान देता रहे, तो संसार में कोई महान् कार्य नहीं हो सकता। क्या तुमने यह श्लोक सुना है -

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा।।।

नीतिकुशल लोग तुम्हारी मृत्यु आज हो या अगले युग में, परंतु न्यायपथ से कभी विचलित न होना। कितने ही तूफान पार करने पर मनुष्य शांति के राज्य में पहुँचता है। जिसे जितना बड़ा होना है, उसके लिए उतनी ही

कठिन परीक्षा रखी गयी है। परीक्षा रूपी कसौटी पर उसका जीवन कसने पर ही जगत् ने उसको महान् कहकर स्वीकार किया है। जो भीरू या का पुरुष होते हैं, वे समुद्र की लहरों को देखकर अपनी नाव को किनारे पर ही रखते हैं। जो महावीर होते हैं, वे क्या किसी बात पर ध्यान देते हैं? ''जो कुछ होना है सो हो, मैं अपना ईष्टलाभ करके ही रहूँगा''

-यही यथार्थ पुरुषकार है। इस पुरुषकार के हुए बिना कोई भी दैवी सहायता तुम्हारी जड़ता को दूर नहीं कर सकती।

इस जीवन में जो सर्वदा हताशचित रहते हैं, उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। वे जन्म-जन्मान्तर में 'हाय, हाय' करते हुए आते हैं और चले जाते हैं। वीरभोग्या वसुन्धरा अर्थात् वीर लोग ही वसुन्धरा का भोग करते हैं - यह वचन नितान्त सत्य है। वीर बनो, सर्वदा कहो, 'अभीः' - मैं निर्भय हूँ। सबको सुनाओ- 'माभैः' - भय न करो। भय ही मृत्यु है, भय ही पाप, भय ही नरक, भय ही अधर्म तथा भय ही व्यभिचार है। संसार में जो भी नकारात्मक या बुरे भाव हैं, वे सब इस भयरूप शैतान से उत्पन्न हुए हैं। इस भय ने ही सूर्य के सूर्यत्व को, वायु के वायुत्व को, यम के यमत्व को अपने अपने स्थान पर रख छोड़ा है, अपनी अपनी सीमा से किसी को बाहर नहीं जाने देता।

यह शरीर धारणकर तुम कितने ही सुख-दुःख तथा सम्पद-विपद की तरंगों में बहाये जाओ, पर ध्यान रखना ये सभी क्षणस्थायी हैं। इन सबको अपने ध्यान में भी नहीं लाना।

अपने आप पर विश्वास

आत्मविश्वास का आदर्श ही हमारी सर्वाधिक सहायता कर सकता है। यदि यह 'आत्मविश्वास' और भी विस्तृत रूप से प्रचारित होता और कार्यरूप में परिणत हो जाता, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि जगत् में जितना दुःख और अशुभ है, उसका अधिकांश लुप्त हो जाता। मानव-जाति के सम्रग इतिहास में सभी महान स्त्री-पुरुषों में यदि कोई महान् प्रेरणा सबसे अधिक सशक्त रही है, तो वह यही आत्मविश्वास है। वे इस ज्ञान के साथ पैदा हुए थे कि वे महान बनेंगे और वे महान् बने भी। मनुष्य कितनी भी गिरी हुई अवस्था में क्यों न पहुँच जाय, एक ऐसा समय जरूर आता है, जब वह उससे आर्त होकर ऊर्ध्वगामी मोड़ लेता है और स्वयं में विश्वास करना सीखता है। पर हम लोगों को शुरू से ही इसे जान लेना अच्छा है।

जो व्यक्ति स्वयं से घृणा करने लगा है, उसके पतन का द्वार खुल चुका है; यही बात राष्ट्र के विषय में भी सत्य है।

हमारा पहला कर्तव्य यह है कि हम स्वयं से घृणा न करें; क्योंकि आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम स्वयं में विश्वास रखें और फिर ईश्वर में। जिसे स्वयं में विश्वास नहीं, उसे ईश्वर में कभी विश्वास नहीं हो सकता।

तुम जो कुछ सोचोगे, वही हो जाओगे, यदि तुम अपने को दुर्बल सोचोगे, तो दुर्बल हो जाओगे; बलवान सोचोगे,; तो बलवान हो जाओगे। यदि तुम अपने को अपवित्र सोचोगे, तो अपवित्र हो जाओगे; अपने को शुद्ध सोचोगे, तो शुद्ध हो जाओगे। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि हम स्वयं को दुर्बल न समझें, प्रत्युत् अपने को बलवान, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ मानें। यह भाव हममें चाहे अब तक प्रकट न हुआ हो, पर हममें है जरूर। हमारे भीतर संपूर्ण ज्ञान, सारी शक्तियाँ, पूर्ण पवित्रता और स्वाधीनता के भाव विद्यमान है। फिर हम इन्हें अपने जीवन में व्यक्त क्यों नहीं कर सकते? इसलिए कि उन पर विश्वास नहीं है। यदि हम उन पर विश्वास कर सकें, तो उनका विकास होगा- अवश्य होगा।

संसार का इतिहास उन थोड़े से व्यक्तियों का इतिहास है, जिनमें आत्मविश्वास था। वह विश्वास अन्तः स्थित देवत्व को ललकार कर प्रकट कर देता है, तब व्यक्ति कुछ भी कर सकता है, वह सर्वसमर्थ हो जाता है। असफलता तभी होती है, जब तुम अपने अन्तःस्थ अमोघ शक्ति को अभिव्यक्त करने की यथेष्ट चेष्टा नहीं करते। जिस क्षण व्यक्ति या राष्ट्र आत्मविश्वास खो देता है, तो उसी क्षण उसकी मृत्यु आ जाती है।

अनुकरण बुरा है

मेरे मित्रो! एक बात तुमको और समझ लेनी चाहिए और वह यह कि हमें अन्य राष्ट्रों से अवश्य ही बहुत-कुछ सीखना है। जो व्यक्ति कहता है कि मुझे कुछ नहीं सीखना है, समझ लो कि वह मृत्यु की राह पर है। जो राष्ट्र कहता है कि हम सर्वज्ञ हैं, उसका पतन आसन्न है! जब तक जीना है, तब तक सीखना है, उसे अपने साँचे में ढाल लेना है। अपने असल तत्त्व को सदा बचाकर फिर बाकी चीजें सीखनी होगी।

कोई दूसरे को सीखा नहीं सकता। तुम्हें स्वयं ही सत्य का अनुभव करना है और उसे अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित करना है। सभी को अपने व्यक्तित्व के विकास का, अपने पैरों पर खड़े होने का, अपने विचार स्वयं सोचने का और अपनी आत्मा को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिया। जेलबद्ध सैनिकों की भाँति एक साथ खड़े होने, एक साथ बैठने, एक साथ भोजन करने और एक साथ सिर हिलाने के समान, दूसरों के दिए हुए सिद्धान्तों को निगलने से क्या लाभ? विविधता जीवन का चिन्ह है; एकरूपता मृत्यु की निशानी है।

दूसरों की नकल करना सभ्यता नहीं है, यह एक महान् स्मरणीय पाठ है। अनुकरण, कायरतापूर्ण अनुकरण कभी उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ा सकता। यह तो निश्चित रूप से मनुष्य के अधःपतन का लक्षण है।

...हमें अवश्य दूसरों से अनेक बाते सीखनी होंगी। जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है। औरों के पास जो कुछ भी अच्छा पाओ, सीख लो; पर उसे अपने भाव के साँचे में ढालकर लेना होगा। दूसरे की शिक्षा ग्रहण करते समय उसके ऐसे अनुगामी न बनो कि अपनी स्वतंत्रता ही गँवा बैठो। भारतीय जीवन-पद्धति को छोड़ मत देना। पल भर के लिये भी ऐसा न सोचना कि भारतवर्ष के सभी निवासी यदि अमुक जाति की वेशभूषा धारण कर लेते या अमुक जाति के आचार-व्यवहार आदि के अनुगामी बन जाते, तो बड़ा अच्छा होता।

बीज को भूमि में बो दिया गया और उसके चारों ओर मिट्टी, वायु तथा जल रख दिये गये; तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है, या वायु अथवा जल बन जाता है? नहीं, वह तो वृक्ष ही होता है, वह अपनी वृद्धि के नियम से ही बढ़ता है - वायु, जल और मिट्टी को अपने में पचाकर, उनको उद्‍भिज पदार्थ में परिवर्तित करके वह एक वृक्ष हो जाता है। प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के सार-भाग को आत्मसात्

करके पुष्टि-लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार विकास करे।

नैतिकता क्या है?

सभी नीति-शास्त्रों में एक ही भाव भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट हुआ है और वह है दूसरों का उपकार करना। मनुष्य के प्रति, सारे प्राणियों के प्रति दया ही मानव-जाति के समस्त सत्कर्मों का प्रेरक है और ये सब 'मैं ही विश्व हूँ' और 'यह विश्व अखण्ड है' - इसी सनातन सत्य के विभिन्न भाव मात्र हैं। यदि ऐसा न हो, तो दूसरों का हित करने में भला कौन-सी युक्ति है? मैं क्यों दूसरों का उपकार करूँ? परोपकार करने को मुझे कौन बाध्य करता है? सर्वत्र समदर्शन से उत्पन्न सहानुभूति की जो भावना है, उसी से यह बात सिद्ध होती है। अत्यन्त कठोर अन्तःकरण भी कभी कभी दूसरों के प्रति सहानुभूति से भर जाता है। और तो और, जो व्यक्ति ' यह आपात-प्रतीयमान व्यक्तित्व वास्तव में भ्रम मात्र है; इस भ्रमात्मक व्यक्तित्व में आसक्त रहना अत्यन्त गर्हित कार्य है' - ये सब बातें सुनकर भयभीत हो जाता है, वही व्यक्ति तुमसे कहेगा कि संपूर्ण आत्मत्याग ही सारी नैतिकता का केन्द्र है।

परंतु पूर्ण आत्मत्याग क्या है? संपूर्ण आत्मत्याग हो जाने पर क्या शेष रहता है? आत्मत्याग का अर्थ है, इस मिथ्या आत्मा या 'व्यक्तित्व' का त्याग, सब प्रकार की स्वार्थ-परता का त्याग। यह अहंकार और ममता पूर्व कुसंस्कारों के फल हैं और जितना ही इस 'व्यक्तित्व' का त्याग होता जाता है, उतनी ही आत्मा अपने नित्य स्वरूप में, अपनी पूर्ण महिमा में अभिव्यक्त होती है। यही वास्तविक आत्मत्याग है और यही समस्त नैतिक शिक्षा का केन्द्र, आधार और सार है। मनुष्य इसे जाने या न जाने, समस्त जगत धीरे-धीरे इसी दिशा में जा रहा है, अल्पाधिक परिमाण में इसी का अभ्यास कर रहा है। बात केवल इतनी ही ही है कि अधिकांश लोग इसे अचेतनपूर्वक कर रहे हैं। वे इसे चेतनपूर्वक करें। यह 'मैं और मेरा' प्रकृत आत्मा नहीं, बल्कि मात्र एक सीमाबद्ध भाव है, यह जानकर वे इस मिथ्या व्यक्तित्व को त्याग दें। आज जो मनुष्य रूप में परिचित है, वह उस जागदातीत अन्नत सत्ता की एक झलक मात्र है, उस सर्वस्वरूप अनन्त अग्नि का एक स्फुलिंग मात्र है; वह अनन्त ही उसका सच्चा स्वरूप है।

दुनिया में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो पूर्णतया बुरी हो। यहाँ शैतान और ईश्वर - दोनों के लिए ही स्थान है, अन्यथा शैतान यहाँ होता ही नहीं। जैसे मैंने तुमसे कहा ही है, हम नरक में से होकर ही स्वर्ग की ओर कूच करते हैं। हमारी भूलों की यही यहाँ उपयोगिता है। बढ़े चलो! यदि तुम सचेत हो कि तुमने कोई गलत कार्य किया है, तो भी पीछे मुड़कर मत देखो। यदि पहले तुमने ये गलतियाँ न की होतीं, तो क्या तुम मानते हो कि आज तुम जैसे हो, वैसे हो पाते? अतः अपनी भूलों को आशीर्वाद दो। वे अदृश्य देवदूतों के समान रही हैं। धन्य हो दुःख! धन्य हो सुख! चिन्ता न करो कि तुम्हारे मत्थे क्या आता है। आदर्श को पकड़े रहो। बढ़ते चलो! छोटी-छोटी बातों और भूलों पर ध्यान न दो। हमारी इस रणभूमि में भूलों की धूल तो उड़ेगी ही।

परोपकार ही धर्म है; परपीड़न ही पाप। शक्ति और पौरुष पुण्य है, कमजोरी और कायरता पाप। स्वतंत्रता पुण्य है; पराधीनता पाप। दूसरों से प्रेम करना पुण्य है, दूसरों से घृणा करना पाप। परमात्मा में तथा स्वयं में विश्वास पुण्य है; संदेह करना पाप। एकत्व-बोध पुण्य है; अनेकता देखना ही पाप। विभिन्न शास्त्र केवल पुण्य-प्राप्ति के ही साधन बताते हैं।

किसी भी धर्म अथवा किसी भी आचार्य द्वारा किसी भी भाषा में उपदिष्ट सारे नीतिशास्त्रों का मूल तत्त्व है - 'निः स्वार्थ बनो', 'मैं नहीं, वरन् 'तू' - यही भाव सारे नीतिशास्त्र का आधार है और इसका तात्पर्य है, व्यक्तित्व के अभाव की स्वीकृति - यह भाव आना कि तुम मेरे अंग हो और मैं तुम्हारा, तुमको चोट लगने से मुझे चोट लगेगी और तुम्हारी सहायता करके मैं अपनी ही सहायता करूँगा, जब तक तुम जीवित हो, मेरी मृत्यु नहीं हो सकती। जब तक इस विश्व में एक कीट भी जीवित रहेगा, मेरी मृत्यु कैसे हो सकती है? क्योंकि उस कीट का जीवन में भी तो मेरा जीवन है! साथ ही यह भी सिखाता है कि हम अपने साथ जीवने वाले किसी भी प्राणी की सहायता किये बिना नहीं रह सकते, क्योंकि उसके हित में ही हमारा भी हित समाहित है।

मनुष्य को नैतिक और पवित्र क्यों होना चाहिये? इसलिए कि इससे उसकी संकल्प-शक्ति बलवती होती है। मनुष्य की भली प्रकृति को अभिव्यक्त करते हुए उसकी संकल्प-शक्ति को सबल बनानेवाली हर चीज नैतिक है और इसके विपरीत करनेवाली हर चीज अनैतिक है।

आदर्श को पकड़े रहो

आदर्श की उपलब्धि के लिए सच्ची इच्छा- यही पहला बड़ा कदम है। इसके बाद बाकी सब कुछ सहज हो जाता है। संघर्ष एक बड़ा पाठ है। याद रखो, संघर्ष इस जीवन में बड़ा लाभदायक है। हम संघर्ष में से होकर ही अग्रसर होते हैं - यदि स्वर्ग के लिये कोई मार्ग है, तो वह नरक में से होकर जाता है। नरक से होकर स्वर्ग - यही सदा का रास्ता है। जब जीवात्मा परिस्थितियों का सामना करते हुए मृत्यु को प्राप्त होती है, जब मार्ग में इस प्रकार सहस्रों बार मृत्यु होने पर भी शक्तिशाली बन जाती है और उस आदर्श पर हँसती है, जिसके लिये वह अभी तक संघर्ष कर रही थी, क्योंकि वह जान लेती है कि वह स्वयं उस आदर्श से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। स्वयं मेरी आत्मा ही लक्ष्य है, अन्य और कुछ भी नहीं; क्योंकि ऐसा क्या है, जिसके साथ मेरी आत्मा की तुलना हो सके? सुवर्ण की एक थैली क्या कभी मेरा आदर्श हो सकती है? कदापि नहीं! मेरी आत्मा ही मेरा सर्वोच्च ध्येय है। अपने प्रकृत स्वरूप की अनुभूति ही मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है।

दुनिया में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो पूर्णतया बुरी हो। यहाँ शैतान और ईश्वर - दोनों के लिए ही स्थान है, अन्यथा शैतान यहाँ होता ही नहीं। जैसे मैंने तुमसे कहा ही है, हम नरक

में से होकर ही स्वर्ग की ओर कूच करते हैं। हमारी भूलों की यही यहाँ उपयोगिता है। बढ़े चलो! यदि तुम सचेत हो कि तुमने कोई गलत कार्य किया है, तो भी पीछे मुड़कर मत देखो। यदि पहले तुमने ये गलतियाँ न की होतीं, तो क्या तुम मानते हो कि आज तुम जैसे हो, वैसे हो पाते? अतः अपनी भूलों को आशीर्वाद दो। वे अदृश्य देवदूतों के समान रही हैं। धन्य हो दुःख! धन्य हो सुख! चिन्ता न करो कि तुम्हारे मत्थे क्या आता है। आदर्श को पकड़े रहो। बढ़ते चलो! छोटी-छोटी बातों और भूलों पर ध्यान न दो। हमारी इस रणभूमि में भूलों की धूल तो उड़ेगी ही। जो इतने नाजुक हैं कि धूल सहन नहीं कर सकते, उन्हें पंक्ति से बाहर चले जाने दो।

यदि एक आदर्श पर चलने वाला व्यक्ति हजार भूलें करता है, तो यह निश्चित है कि जिसका कोई भी आदर्श नहीं है, वह पचास हजार भूलें करेगा। अतः एक आदर्श रखना अच्छा है। इस आदर्श संबंध में जितना हो सके, सुनना होगा, तब तक सुनना होगा, जब तक कि वह हमारे अन्दर प्रवेश नहीं कर जाता, हमारे मस्तिष्क में पैठ नहीं जाता, जब तक वह हमारे शरीर के अणु-परमाणु में ओतप्रोत नहीं हो जाता। अतः पहले हमें ाायह आत्मतत्त्व सुनना होगा। कहा है, ''हृदय पूर्ण होने पर मुख बोलने लगता है'' और हृदय के इस प्रकार पूर्ण होने पर हाथ भी कार्य करने लगते हैं।

विचार ही हमारी कार्य-प्रवृत्ति की प्रेरक-शक्ति है। मन को सर्वोच्च विचारों से भर लो, दिन-पर-दिन इन्हीं भावों को सुनते रहो, माह-पर-माह इन्हीं का चिन्तन करो। प्रारंभ में सफलता न भी मिले, पर कोई हानि नहीं; यह असफलता तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह मानव-जीवन का सौन्दर्य है। इन असफलताओं के बिना जीवन क्या होता? यदि जीवन में इस असफलता को जय करने की चेष्टा न रहती, तो जीवन धारण करने का कोई प्रयोजन ही न रह जाता। उसके न रहने पर जीवन का कवित्व कहाँ रहता? यह असफलता, यह भूल रहने से हर्ज भी क्या? मैंने गाय को कभी झूठ बोलते नहीं सुना, पर वह सदा गाय ही रहती है, मनुष्य कभी नहीं हो जाती। अतः यदि बार-बार असफल हो जाओ, तो भी क्या? कोई हानि नहीं, हजार बार इस आदर्श को हृदय में धारण करो और यदि हजार बार भी असफल हो जाओ, तो एक बार फिर प्रयत्न करो। सब जीवों में ब्रह्मदर्शन ही मनुष्य का आदर्श है। यदि सब वस्तुओं में उसको देखने में तुम सफल न होओ, तो कम-से-कम एक ऐसे व्यक्ति में, जिसे तुम सर्वाधिक प्रेम करते हो, उसका दर्शन करने का प्रयत्न करो, तदुपरांत दूसरों में उसका दर्शन करने की चेष्टा करो। इसी प्रकार तुम आगे बढ़ सकते हो। आत्मा के सम्मुख तो अनन्त जीवन पड़ा हुआ है - अध्यवसाय के साथ लगे रहने पर तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।

एक विचार लो, उसी को अपना जीवन बनाओ- उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो और उसी में जीवन बिताओ। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु तथा शरीर के सर्वांग उसी विचार से पूर्ण रहें। दूसरे सारे विचार छोड़ दो। यही सिद्ध होने का उपाय है और इसी उपाय से बड़े-बड़े धर्मवीरों की उत्पत्ति हुई है। बाकी लोग बातें करनेवाली मशीनें मात्र हैं।

आदर्श-पालन में जीवन की व्यावहारिकता है। हम चाहे दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित करें या दैनन्दिन जीवन के कठोर कर्तव्यों का पालन करें, परंतु हमारे संपूर्ण जीवन में आदर्श ही ओतप्रोत रूप से विद्यमान रहता है। इसी आदर्श की किरणें सीधी अथवा वक्र गति से प्रतिबिम्बित तथा परावर्तित होकर मानो हमारे प्रत्येक रंध्र तथा वातायन से होकर जीवन-गृह में प्रवेश करती रहती है और हमें जानकर या अनजाने उसी के प्रकाश में अपना प्रत्येक कार्य करना पड़ता है, प्रत्येक वस्तु को उसी के द्वारा परिवर्तित, परिवर्द्धित या विरूपित देखना पड़ता है। हम अभी जैसे हैं, वैसा आदर्श ने ही बनाया है अथवा भविष्य में जैसे होनेवाले हैं, वैसा आदर्श ही बना देगा। आदर्श की शक्ति ने ही हमें आवृत्त कर रखा है तथा अपने सुखों में या अपने दुःखों में, अपने महान् कार्यों में या अपने निकृष्ट कार्यों में, अपने गुणों में या अपने अवगुणों में, हम उसी शक्ति का अनुभव करते हैं। ❃

फार्म- IV

उद्घोषणा

पत्रिका का नाम : युगसेतु

1. प्रकाशन स्थान	:	जी-21, प्रथम तल, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092
2. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3. प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक का नाम	:	ओम प्रकाश शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	जी-21, प्रथम तल, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092
4. स्वत्वाधिकारी का नाम	:	ओम प्रकाश शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	जी-21, प्रथम तल, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

मैं ओम प्रकाश शर्मा, एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास में पूर्णतः सही है।

तिथि : 6/03/2012

ओम प्रकाश शर्मा
प्रकाशक के हस्ताक्षर

महिला लेखन के सूत्र

❒ ओम प्रकाश शर्मा

भारतीय पुनर्जारण से लेकर स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जनमानस में आत्मचेतना की जो लहर पैदा हुई, उसने समाज के दबे-कुचले-उपेक्षित-महत्त्वहीन बने रहे व्यक्ति-समूहों को अपनी धारा में समेटा, जिसके परिणामस्वरूप यह वर्ग सामाजिकों-साहित्यिकों की चिंता का केन्द्र में आया, तो दूसरी ओर स्वयं इनमें भी अपने अस्तित्व को खोजने और पहचान को कायम करने की ललक जगी। इसी का परिणाम हुआ कि बड़ी संख्या में दलितों, पिछड़ों, महिलाओं सहित सामान्य वर्ग के दीन-हीन लोगों ने अपनी यातना और अंतर्वेदना की थाती को समेटकर इसके रचनात्मक उपयोग का साहस दिखाया। इन लोगों ने अपनी खास तरह की संचित संवेदना के कोष से अब तक जाने-अनजाने अछूते-अनछुए पहलुओं को उजागर कर अपनी जातीय पहचान बनाने की कोशिश की। फलतः एक विशेष दृष्टिकोण से देखा गया अलग ढंग का लेखन और उससे उद्भूत स्वतंत्र चिंतन का अस्तित्व सामने आया। हिन्दी साहित्य में दलित लेखन, महिला लेखन, अल्पसंख्यक लेखन जैसे अलग-अलग खाँचे की निर्मिति का आरंभ इसी चेतना के तहत हुआ। निश्चय ही इसमें जहाँ अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सामाजिक-सांस्कृतिक अनिवार्यताएँ रही हैं, वहीं मानवाधिकारों की वैश्विक चेतना जैसे दिशा-बोध की भूमिकाएँ भी रही हैं।

हिन्दी साहित्य के उत्स के साथ से ही प्रेरक, सर्जक और वर्ण्य-विषय के रूप में नारी की उपस्थिति रही है, तथापि समकालीन संदर्भ में जिस महिला लेखन की बात की जाती है, उसका संबंध महिलाओं द्वारा, महिलाओं के बारे में और महिलाओं के लिए किए गए लेखन से है। महिला-रचनाकारों की कृतियों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि ये तीनों तत्व कमोबेश प्रत्येक साहित्य-साधिका के यहाँ विद्यमान हैं। यह एक सर्वमान्य सत्य बनकर उभर रहा है कि अभिव्यक्ति की सुलभता पाकर नारी ने चाँद-सितारों की ओर देखने की बजाय अपने आप को देखा-परखा और प्रकट किया है। लेकिन हिन्दी महिला लेखन का वर्तमान संदर्भ पश्चिमी नारीवाद के उस आयाम से भी जुड़ता है जहाँ महिलावादी लेखन के लिए महिला-रचनाकारों को विशेष योग्यता और दक्षता अर्जित करनी पड़ती है, किसी लेखन को इसलिए महिलावादी नहीं मान लिया जाता कि वह

> समकालीन हिन्दी महिला लेखन तमाम विविधताओं, विचित्रताओं तथा संभावनाओं को अपने अंदर समेटने के बावजूद अर्थ और काम पर ही केन्द्रित रहा है। जाने-अनजाने इन्हीं दो ध्रुवों पर सिमटने के कारण यही इसकी पहचान बन गई है। आर्थिक स्वनिर्भरता की चाह जहाँ पुरुष स्वामित्व वाले एकाधिकार को चुनौती देती हुई प्रकट हुई है, वहीं यौन-शुचिता को स्त्री-पुरुष दोनों के लिए एक समान मानदंड पर स्थिर करने का संकल्प व्यक्त हुआ है। काम-संबंधों की यथार्थ प्रस्तुति के बहाने विवाहपूर्व और विवाहेतर यौन संबंध स्थापित कर महिलाओं को पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करने का मार्ग भी दिखया गया है। स्पष्ट है कि यह बहुत सारे साधनों से संपन्न बैठी-बैठाई महिला-रचनाकारों के मन का फितूर है। निर्धनता, अशिक्षा, रोजगार, अपराध, विस्थापन जैसी स्त्री के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हैं जिनका संबंध बृहत्तर नारी जाति से है। तथाकथित बोल्ड लेखिकाओं का मन जितना यौन-संबंधों के चित्रण में रमा है, उतना ही यदि इन प्रश्नों से टकराने में लगा होता तो इस लेखन की सार्थकता बढ़ जाती।

महिला द्वारा महिला विषय पर लिखा हुआ है। लिंग भेद के प्रति सजगता बरतकर 'औरत की तरह लिखने और पढ़ने' पर यह उपलब्ध होता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक नारी होने के नाते साहित्यकारों ने स्त्री जीवन के अंतर्बाह्य जीवनानुभवों को प्रस्तुत किया, वहीं नारी मन की गहराइयों में उतरकर उसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अंकन भी किया है। नारीत्व की पुरुष मर्यादित सीमाओं का कहानी, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से अतिक्रमण कर नये धरातल की नींव रखी है। फिर भी स्वतंत्रता के बाद हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार कथा-साहित्य का प्रभुत्व स्थापित हुआ, उसी प्रकार महिला लेखन का ढाँचा भी कथा-साहित्य के माध्यम से ही खड़ा हुआ। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि जिस विशिष्ट संवेनात्मक धरातल पर महिला लेखन की अलग पहचान बनी है, वह कथा-साहित्य के माध्यम से ही संभव हुआ है, अर्थात् यही महिला लेखन की प्रवृत्तियों का वाहक है। इसका यह भी एक कारण है कि महिला लेखन जिस अर्थ और काम को आधार बनाकर बौद्धिक विमर्श प्रस्तुत करना चाहता है, उसके लिए भावना प्रधान कविता की जगह विचार प्रधान गद्य ही ज्यादा सक्षम है। कोमल और भावुक हृदय वाली नारी ने जिस विचार प्रधान कथा-साहित्य का सृजन किया है, वह कथ्य और भाषा की दृष्टि से अप्रतिम विश्वसनीयता और प्रामाणिकता से युक्त हो गया है। स्त्री केन्द्रित रचनाओं की स्त्रीत्व के विशिष्ट कोण से समीक्षा नहीं हो पायी है। इस बिन्दु पर आकर इसे बड़े आलोचक पुरुषों द्वारा बताया जाता है कि 'औरत की तरह' ऐसे लिखना चाहिए, वैसे नहीं। अपने 'स्त्रीत्व' के प्रति जागरूक रचनाकार को निश्चय ही यह उसके आत्मसम्मान के खिलाफ लगता होगा। अतः उम्मीद की जानी चाहिए कि आलोचना क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी।

समकालीन हिन्दी महिला लेखन तमाम विविधताओं, विचित्रताओं तथा संभावनाओं को अपने अंदर समेटने के बावजूद अर्थ और काम पर ही केन्द्रित रहा है। जाने-अनजाने इन्हीं दो ध्रुवों पर सिमटने के कारण यही इसकी पहचान बन गई है। आर्थिक स्वनिर्भरता की चाह जहाँ पुरुष स्वामित्व वाले एकाधिकार को चुनौती देती हुई प्रकट हुई है, वहीं यौन-शुचिता को स्त्री-पुरुष दोनों के लिए एक समान मानदंड पर स्थिर करने का संकल्प व्यक्त हुआ है। काम-संबंधों की यथार्थ प्रस्तुति के बहाने विवाहपूर्व और विवाहेतर यौन संबंध स्थापित कर महिलाओं को पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करने का मार्ग भी दिखया गया है। स्पष्ट है कि यह बहुत सारे साधनों से संपन्न बैठी-बैठाई महिला-रचनाकारों के मन का

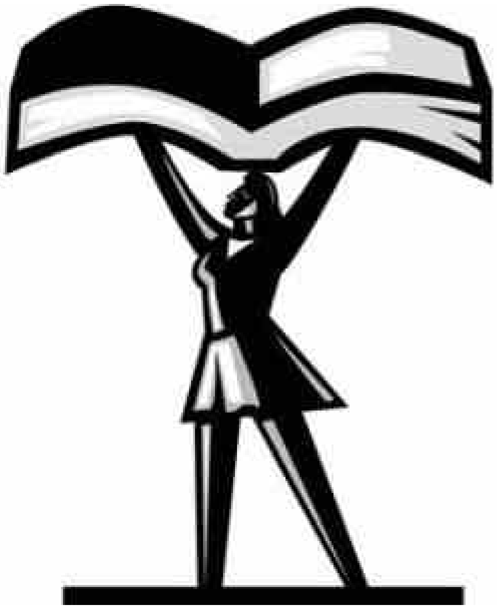

फितूर है। निर्धनता, अशिक्षा, रोजगार, अपराध, विस्थापन जैसी स्त्री के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हैं जिनका संबंध बृहत्तर नारी जाति से है। तथाकथित बोल्ड लेखिकाओं का मन जितना यौन-संबंधों के चित्रण में रमा है, उतना ही यदि इन प्रश्नों से टकराने में लगा होता तो इस लेखन की सार्थकता बढ़ जाती।

यौन समस्या एक पूरा विषय बनकर महिला लेखन में प्रस्तुत हुआ है, जहाँ यौन नैतिकता के पुरुष दृष्टिकोण के प्रति आक्रोश व्यक्त कर यौन स्वछंदता से गुजरकर स्त्री-स्वातंत्र्य की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इसी से जुड़कर स्त्री की कामुकता को विशेष आकर्षण के साथ प्रस्तुत करने वाला शौकिया किस्म का 'बोल्ड' लेखन किया गया है, जहाँ व्यक्तिगत कुंठाओं-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति अधिक हुई है, सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों का प्रेरक यथार्थ सिरे से गायब रहा है। भारतीय संदर्भ में इस प्रकार का खुला सेक्स लेखन न तो अपनी परंपराओं-मान्यताओं के अनुकूल ठहरता है और न ही बृहत्तर भारतीय नारी समाज की अनिवार्यताओं के अनुरूप। भारतीय जनमानस सिर्फ औरतों की ही काम-वासना पर मर्यादा और संयम की अपेक्षा नहीं रखता, अपितु पुरुषों से भी ऐसी उम्मीद रखा जाता है और इसका उल्लंघन करने वाले को हिकारत की नजर से देखा जाता है। इसलिए यह विचार की औरत की समस्या उसके सेक्स की समस्या है, भारतीय संदर्भ में पूरी तरह खारिज हो जाता है। ऐसा कुविचार स्त्री और पुरुष के संबंध को सेक्स संबंधों तक सीमित मानता है, सेक्स को ही स्त्री की पहचान बताता है। काम-वासना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होकर भी किसी भी काल के किसी भी समाज की संचालिका-नियामिका शक्ति नहीं रही है। औरत की चेतना को उसकी योनि से उद्भूत बताने वालों से सावधान रहने की जरूरत है। इसे नारी को देह में, देह को वस्तु में और वस्तु को भोग तक पहुँचाने वाले उपभोक्ता-बाजारवाद का संस्करण मानना चाहिए, जिसकी अंतिम परिणिति ग्राहक, वस्तु और विक्रेता के रूप में पूरे समाज को पहुँचाने की है। जिन लेखिकाओं ने नारी को भोग्य वस्तु मानने वाली दृष्टि का विरोध किया है, उनका प्रयास सराहनीय है। पर यह भी ध्यान रखना है कि स्त्री को सेक्स विक्रेता भी नहीं बनना है, जो मनचाहे दाम पर बिके। जहाँ आज भी पति-पत्नी के बीच के वैध काम सुख के प्रदर्शन को भी मर्यादित किया गया हो, भारतीय समाज जिसका सहजता से पालन करता हो, वहाँ मुक्त सेक्स की माँग करने वाली महिलाएँ कौन-सी हो सकती हैं? यह ठीक है कि मनुष्य से यानी स्त्री-पुरुष से यह सेक्स अभिन्न रूप से जुड़ा है, तथापि सेक्स ही मनुष्यता नहीं है। साहित्य यदि मानवता का पोषक है तो 'बोल्ड' लेखिकाओं को मनुष्य में सेक्स को उद्दीप्त करने से बचना चाहिए।

नारी विषयक रचनाओं में लेखिकाओं का साहित्यिक खेमेबंदी पर आग्रह कम, औरतपन के कारण सहज उपलब्ध स्वानुभूति अधिक व्यक्त हुई है। यहाँ लिंगगत साँचा ज्यादा स्पष्ट है, साहित्यिक वादों की अपेक्षा। रचनाकारों की अपनी-अपनी दृष्टि की भिन्नता के बावजूद स्त्री मुद्दों के प्रति प्रतिबद्धता सबमें विद्यमान है। प्रतिवाद और प्रतिक्रिया की धार पर औरतपन की पुरानी मर्यादा रेखा का अतिक्रमण हो रहा है, यानी प्रतिक्रिया और प्रतिकार इसका मुख्य स्वर बनकर उभरा है। काम, प्रेम, विवाह, दाम्पत्य, मातृत्व, परिवार आदि की नए संदर्भों में सार्थकता खोजी जा रही है। कहीं इन्हें नारी के उत्कर्ष में बाधक बताया जा रहा है, तो कहीं इनके नए आधार-बिंदुओं वाली प्रासंगिकता को तलाशा जा रहा है। यद्यपि यह लेखन परंपरागत संस्कारबद्धता और वर्तमान बोध की स्वतंत्रता की चाहत में द्वंद्वग्रस्त होकर फँसा है, तथापि महिला लेखन और महिला समस्याओं में गहरा रिश्ता प्रकट होता है। दोनों में परस्पर अभिन्नता झलकती है। इसलिए महिला चिंतन की दृष्टि से इस लेखन को अधिक प्रामाणिक मानकर विश्वसनीयता प्राप्त हुई है।

सेक्स के संदर्भ में मनुष्य की सार्थकता तलाशने की बजाय मनुष्यता के धरातल पर सेक्स की उपयोगिता तलाशनी चाहिए। मुक्त सेक्स की समस्या न तो दलित औरतों की है, न पिछड़ी औरतों की; और न जनजाति औरतों की है, न ही ग्रामीण औरतों की। बहन, माँ, चाची, भाभी, मामी, नानी यहाँ तक कि पत्नी विशेषण रखने वाली स्त्रियों की भी नहीं है। यह तो इन सब से कटे औरत की माँग हो सकती है। वैयक्तिक से लेकर सामाजिक स्तर तक महिलाओं के समक्ष अनेक चुनौतयाँ हैं जो उसकी सेक्स समस्या से पृथक, पर अति महत्त्व की हैं। अतः हिन्दी महिला लेखन को भारतीय समाज की इन चुनौतियों का सामना कर अपनी प्रासंगिकता बनानी चाहिए, न कि इसे किसी की व्यक्तिगत कुंठाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनना चाहिए।

आज के हिन्दी महिला लेखन का प्रमुख स्वर आक्रोश का है, नकार का है। यह आक्रोश और नकार का भाव पुरुषसत्तात्मकता के प्रति है जिसने स्त्री को दोयम दर्जे का इंसान बनाया है, उसके मानवी रूप को उभरने से रोका है। नारी जीवन की छटपटाहट, टूटन, शोषण, उत्पीड़न से कसमसाती सहनशीलता प्रस्तुत हुई है। परंपरागत नैतिकता और मर्यादा की सीमा को भेदकर व्यक्त खुलेपन में स्त्री का रूदनगान सुनाई देता है, जिससे लगता है कि स्त्री के जीवन में दुख ही दुख है। फलतः वास्तविक जगत की महिलाओं की संघर्षशील जीवटता और आत्मविश्वास वाला रूप प्रकट नहीं हो पाया है। इसकी स्थिति भटकाव की बनी हुई है जो स्त्रीत्व के नए धरातल को चिन्हित करने में कुछ हद तक असफल रहा है। महिलाओं की दुरावस्था का आकलन करने के क्रम में स्त्री के शोषण, उत्पीड़न के परंपरागत साधनों के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति मुखर रही है, वर्तमान की आयातित चुनौतियों के प्रति सजगता कम प्रकट हुई है। इस प्रकार जाहिर है कि हिन्दी महिला लेखन भ्रमहीन परिपक्वकता को प्राप्त नहीं कर सका है, फिर भी यह द्रष्टव्य है कि इस अतिरेक और आक्रोश के बीच से संतुलन का नया रास्ता अख्तियार होगा।

नारी विषयक रचनाओं में लेखिकाओं का साहित्यिक खेमेबंदी पर आग्रह कम, औरतपन के कारण सहज उपलब्ध स्वानुभूति अधिक व्यक्त हुई है। यहाँ लिंगगत साँचा ज्यादा स्पष्ट है, साहित्यिक वादों की अपेक्षा। रचनाकारों की अपनी-अपनी दृष्टि की भिन्नता के बावजूद स्त्री मुद्दों के प्रति प्रतिबद्धता सबमें विद्यमान है। प्रतिवाद और प्रतिक्रिया की धार पर औरतपन की पुरानी मर्यादा रेखा का अतिक्रमण हो रहा है, यानी प्रतिक्रिया और प्रतिकार इसका मुख्य स्वर बनकर उभरा है। काम, प्रेम, विवाह, दाम्पत्य, मातृत्व, परिवार आदि की नए संदर्भों में सार्थकता खोजी जा रही है। कहीं इन्हें नारी के उत्कर्ष में बाधक बताया जा रहा है, तो कहीं इनके नए आधार-बिंदुओं वाली प्रासंगिकता को तलाशा जा रहा है।

यद्यपि यह लेखन परंपरागत संस्कारबद्धता और वर्तमान बोध की स्वतंत्रता की चाहत में द्वंद्वग्रस्त होकर फँसा है, तथापि महिला लेखन और महिला समस्याओं में गहरा रिश्ता प्रकट होता है। दोनों में परस्पर अभिन्नता झलकती है। इसलिए महिला चिंतन की दृष्टि से इस लेखन को अधिक प्रामाणिक मानकर विश्वसनीयता प्राप्त हुई है।

महिला लेखन का पूरा नहीं, पर बहुलांश शहरी-महानगरीय उच्च मध्यवर्ग के घर-परिवार की महिलाओं की स्थितियों की प्रस्तुति पर केन्द्रित रहा है। इसकी वजह अधिकांश महिला-साहित्यकारों का इसी वर्ग और क्षेत्र से संबंद्ध होना है। हिन्दी महिला लेखन पूरे भारतीय परिवेश की महिलाओं की स्थिति का प्रतिबिंब नहीं झलका पाता। यह सीमित क्षेत्र के, सीमित वर्ग की, सीमित समस्याओं से ही साक्षात्कार करा पाता है, जिसके कारण इस पर सीमित दायरों में सिमटने का आरोप लगाया है। फिर भी जो लेखिकाएँ शहरी मध्य वर्ग के घर-परिवार की सीमारेखा में लेखन-कार्य कर रही हैं, उनके यहाँ भी मुक्त स्वानुभव की ताकत पर नारी मनोविज्ञान के माध्यम से विषय-विस्तार की कमी को विषय की गहराई तक उतरकर पूरा किया गया है। इससे एक जातीय संवेदना की साझेदारी तो विकसित और विस्तृत होती ही है। इधर चित्रा मुद्‌गल, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला सिन्हा जैसी लेखिकाओं ने ग्रामीण यथार्थ के नारी मानस को अभिव्यक्त करने का साहसिक कार्य कर महिला लेखन के विषय क्षेत्र के विस्तार का प्रयास किया है।

समकालीन हिन्दी महिला लेखन भारत की आधी आबादी के सच तक पहुँचकर अपने विशिष्ट संवेदनात्मक धरातल पर पहचान बनाने की ओर अग्रसर है। भारत की आधी आबादी की वास्तविकता से सचमुच जुड़कर यह एक ओर जहाँ स्त्री के सबलीकरण के प्रयासों को पुष्ट करेगा, वहीं देश-दुनिया को नारी शक्ति के बल पर सक्षम, समृद्ध और मानवीयता से पूर्ण करते हुए अपनी सार्थकता सिद्ध करेगा, अन्यथा इसका सुप्रभाव नगण्य होगा और कुप्रभाव अधिक। ❋

मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम

भरत के लिए आदर्श भाई, हनुमान के लिए स्वामी, प्रजा के लिए नीति-कुशल व न्यायप्रिय राजा, सुग्रीव व केवट के परम मित्र और सेना को साथ लेकर चलने वाले व्यक्तित्व के रूप में भगवान राम को पहचाना जाता है।

उनके इन्हीं गुणों के कारण उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम के नाम से पूजा जाता है।

भगवान राम विषम परिस्थितियों में भी नीति सम्मत रहे। उन्होंने वेदों और मर्यादा का पालन करते हुए सुखी राज्य की स्थापना की। स्वयं की भावना व सुखों से समझौता कर न्याय और सत्य का साथ दिया। फिर चाहे राज्य त्यागने, बाली का वध करने, रावण का संहार करने या सीता को वन भेजने की बात ही क्यों न हो।

दयालु स्वामी :- भगवान राम ने दया कर सभी को अपनी छत्रछाया में लिया। उनकी सेना में पशु, मानव व दानव सभी थे और उन्होंने सभी को आगे बढ़ने का मौका दिया।

सुग्रीव को राज्य, हनुमान, जाम्बवंत व नल-नील को भी उन्होंने समय-समय पर नेतृत्व करने का अधिकार दिया।

अपने दोस्तों से निभाया करीबी रिश्ता :- केवट हो या सुग्रीव, निषादराज या विभीषण। हर जाति, हर वर्ग के मित्रों के साथ भगवान राम ने दिल से करीबी रिश्ता निभाया।

दोस्तों के लिए भी उन्होंने स्वयं कई संकट झेले। इतना ही नहीं शबरी के झूठे बेर खाकर प्रभु श्रीराम ने अपने भक्त के रिश्ते की एक मिसाल कायम की।

सहनशील श्रीराम :- सहनशीलता एवं ध ैर्य भगवान राम का एक और गुण है।

कैकेयी की आज्ञा से वन में चौदह वर्ष बिताना, समुद्र पर सेतु बनाने के लिए तपस्या करना, सीता को त्यागने के बाद राजा होते हुए भी संन्यासी की भांति जीवन बिताना उनकी सहनशीलता की पराकाष्ठा है।

त्याग और समर्पण :- भगवान राम के तीन भाई लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न सौतेली मां के पुत्र थे, लेकिन उन्होंने सभी भाइयों के प्रति सगे भाई से बढ़ कर त्याग और समर्पण का भाव रखा और स्नेह दिया।

यही वजह थी कि भगवान राम के वनवास के समय लक्ष्मण उनके साथ वन गए और राम की अनुपस्थिति में राजपाट मिलने के बावजूद भरत ने भगवान राम के मूल्यों को ध्यान में रखकर सिंहासन पर रामजी की चरण पादुका रख जनता को न्याय दिलाया।

कुशल प्रबंधक :- भगवान राम न केवल कुशल प्रबंधक थे, बल्कि सभी को साथ लेकर चलने वाले थे। वे सभी को विकास का अवसर देते थे व उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग करते थे।

उनके इसी गुण की वजह से लंका जाने के लिए उन्होंने व उनकी सेना ने पत्थरों का सेतु बना लिया था। ❋